शिमला के दैवीय मोहरों का उद्भव व अस्तित्त्व

डा. संजीव कुमार
दृश्य कला विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला

हिमाचल व जिला शिमला में मोहरों के उद्भव व अस्तित्व के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की जनश्रुतियां सुनने को मिलती है। जहाँ एक ओर हिमाचल प्रदेश में प्राचीन व दुर्लभ धातुओं की प्रतिमाओं व मूर्तियों का एक कलात्मक कोष यहां के विभिन्न भव्य व लघु मन्दिरों एवं संग्रहालयों में देखा जा सकता है वहीं दूसरी ओर कलात्मक मोहरों से भी इस प्रदेश के मंदिर भरे पड़े हैं। मूर्तियों का अंकन विभिन्न विधियों, विभिन्न धातुओं और विभिन्न शैलियों में मुकुट से लेकर पैरों तक किया गया प्राप्त हाता है। जिनमे जिला शिमला में प्रमुख मूर्ति हाटेश्वरी माता हाटकोटी और भीमाकाली माता सराहन की है। परन्तु हिमाचल प्रदेश में मोहरों की रचना मुकुट से लेकर केवल छाती तक करने की परम्परा कैसे शुरू हुई जबकि अलंकरण व हावभाव तथा दैवीय चमक में ये मुहरे यहां विद्यमान या यूं कहे भारत में विद्यमान विभिन्न कला शैलियों के समतुल्य है और कहीं–कहीं पर तो उनसे भी बढ़कर भाव प्रवण है। फिर इनका अंकन केवल छाती तक ही क्यों सीमित कर दिया। इसके उत्तर में कोई ठोस प्रमाण अथवा साक्ष्य तो उपलब्ध नहीं है पर जनश्रुतियों के आधार पर महाभारत काल के बाद से ही मोहरे अस्तित्व में आए माने जाते हैं।

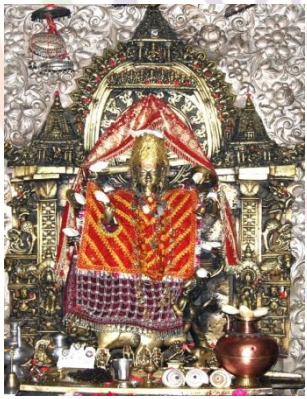

मूर्ति हाटेश्वरी माता हाटकोटि

मोहरा देवी काली चतरखण्ड देवता ब्रांदली

अनुमान किया जाता है कि महाभारत के बब्रूवाहन को कुरूक्षेत्र के एक क्षेत्र में बांस के ऊपर, महाभारत का युद्ध देखने के लिए कृष्ण ने रख दिया था। केवल सिर जो धड़ से अलग था। परन्तु उस सिर में उसकी आत्मा विद्यमान थी। निरूक्त में कहा गया है कि 'बब्री इति रूपमनामद्येयम' अर्थात् बब्री अंतरिक्ष में पैदा होने वाली विद्युत को कहते हैं बब्रूवाहन ने भी योग द्वारा अपने प्राणों की सहस्त्रसार मे खींचकर महाभारत का युद्ध देखा होगा। उसी सिर की प्रतिकृति हिमाचल के देवता है। अतः देवताओं के जितने भी मोहरे हैं वे सब सिर के ही हैं।[1]

इसी प्रकार चौपाल क्षेत्र में भी इससे ही मिलती–जुलती जनश्रुति सुनने को मिलती है तथा जहां पर बब्रूवाहन का सिर काटकर बांस पर रखा था वह स्थान चौपाल का देव आस्था का प्रमुख स्थान चूढ़धार माना जाता है वैसे भी चूढ़ शब्द का अर्थ सिर से ही माना जाता है। यहीं से बब्रूवाहन ने कुरूक्षेत्र में पाण्डवों व कौरवों का युद्ध होते देखा था और यह बात संभव भी है क्योंकि चूढ़दार अपने आप में एक बहुत ऊँची चोटी है जहाँ से बहुत दूर–दूर तक देखा जा सकता है।

इंटरनेट पर ''महाभारता ऑनलाईन डॉट कॉम'' में द स्टोरी ऑफ बरबरीका के अनुसार, ''महाभारत काल में घटोत्कच और मौरवी का बरबरीक नाम का पुत्र था। बरबरीक की माता मौरवी यादव वंश के राजा मुरू की पुत्री थी। इस प्रकार बरबरीक भीमसेन का पोता था। बरबरीक वास्तव में एक यक्ष था जिसका मानव रूप में पुनर्जन्म हुआ था।

मोहरे शास्त्रीय शैली, शिमला

वह पाण्डवों की ओर से युद्ध में भाग लेना चाहता था परन्तु अपनी प्रतिज्ञा और नियमों के अनुसार उसे युद्ध

[1] मेरे रक्षक देव, आर.एल. दार्शनिक, पृ. 33

में हारती हुई सेना का ही साथ देना था। उसन युद्धकला अपनी माता से सीखी थी तथा शिव को अपनी तपस्या से प्रसन्न कर लिया था। अतः शिव भगवान ने उसे तीन अचूक तीर प्रदान किए थे। बाद में अग्नि देव ने उसे धनुष प्रदान किया जो उसे तीनों दुनिया (पाताल, पृथ्वी, स्वर्ग) में विजयी बनाने में सहायक होता।

भगवान कृष्ण ने ब्राह्मण वेश धारण करके बरबरीक की शक्ति की परीक्षा लेने के उद्देश्य से उसे रोका। कृष्ण ने उस पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए कहा कि क्या वह केवल तीन तीर लेकर महाभारत के महायुद्ध में भाग लेना चाहता है। इस पर बरबरीक ने उत्तर दिया कि उसका केवल एक तीर ही पूर्ण सेना को नष्ट करने के लिए काफी है और पूरी सेना नष्ट करने के उपरान्त ये फिर मेरे तरकश में वापिस आ जाएगा। यदि तीनों तीरों का प्रयोग कर दिया तो ये तीनों लोकों में त्राहि मचा देंगें। कृष्ण ने उसे उकसाया कि जिस पीपल के पेड़ के नीचे वे खड़े है अपने केवल एक तीर से इस पीपल के सभी पत्तों को बींध दो। बरबरीक ने सहर्ष कृष्ण की बात मान ली और अपनी तरकश से एक तीन निकाल कर अपने धनुष से उसे छोड़ दिया। तीर ने एक क्षण में ही पीपल के सभी पत्ते बींध डाले। इसी बीच कृष्ण ने पीपल का एक पत्ता अपने पैर के नीचे छुपा रखा था। तीर कृष्ण के पैर के चारों ओर घूमने लगा। तब बरबरीक की शक्ति का प्रमाण देखकर कृष्ण ने उससे पूछा तुम युद्ध में किसका साथ दोगे। बरबरीक ने कहा जो सेना हार रही होगी मैं उसका साथ दूंगा। कृष्ण जानते थे कि युद्ध में कौरवों की हार सुनिश्चित है। कृष्ण ने अनुमान लगाया कि यदि इस साहसी बालक ने कौरवों का पक्ष लिया तो युद्ध कौरवों के पक्ष में हो जाएगा।

तब ब्राह्मण वेशधारी कृष्ण ने योद्धा से दान की मांग की। बरबरीक ने उन्हें कुछ भी दान में मांगने का वचन दिया। कृष्ण ने दान में उनका सिर मांग लिया। बरबरीक हैरान हो गया। उसने सोचा जो दिख रहा है वह सच नहीं है बात तो कुछ और है। तब उसने ब्राह्मण से अनुरोध किया कि अपनी पहचान जाहिर करें। तब श्रीकृष्ण ने अपना दिव्य रूप बरबरीक को दिखाया जिसे देखकर बरबरीक धन्य हो गया। श्रीकृष्ण ने विस्तार से उसे बताया कि इस युद्ध के होने से पहले किसी बहादुर क्षत्रिय का सिर कुर्बानी स्वरूप उन्हें चाहिए जिससे इस युद्धभूमि की पूजा की जा सके। तब कृष्ण ने कहा कि तुम सभी क्षत्रियों में सबसे शूरवीर क्षत्रिय हो इसलिए मैंने इस महान उद्देश्य के लिए तुम्हें इस महादान के उपयुक्त माना है। अतः मैं दान स्वरूप तुम्हारा सिर मांग रहा हूँ। अपने दिए वचन को निभाने और भगवान द्वारा आज्ञा होने के फलस्वरूप बरबरीक ने अपना सिर काटकर उन्हें दान में दे दिया। यह शुक्ल पक्ष के 12वें दिन फाल्गुन मास के मंगलवार की घटना है।

कृष्ण ने बरबरीक के इस महादान पर खुशी जाहिर कि और उसके इस दान के लिए अतिप्रशंसा करते हुए कहा कि जब कलयुग आएगा तो तुम मेरे रूप में

''श्याम'' नाम से पूजे जाओगे। तुम्हारे श्रद्धालु की सभी कामनाएं केवल दिल में तुम्हारा नाम लेने मात्र से पूरी हो जाएगी।

अपना सिर काटने से पहले बरबरीक ने अपनी जिज्ञासा कृष्ण के सम्मुख बताई कि वह महाभारत का युद्ध स्वयं देखना चाहता है और कृष्ण से प्रार्थना की कि वे उसके लिए इसका प्रबन्ध करें। कृष्ण ने उसका अनुरोध सहर्ष स्वीकार किया और किसी ऊँची पहाड़ी पर बांस के ऊपर बरबरीक का सिर रख दिया जहाँ से उसे पूरा युद्ध क्षेत्र दिखाई दे और इस पहाड़ी से बरबरीक ने पूरे युद्ध को होते देखा।

युद्ध के अन्त में विजयी पाण्डव भाईयों में इस बात पर बहस छिड़ गई कि युद्ध में विजय का श्रेय किसे दिया जाए। कृष्ण ने सलाह दी कि इस बात का सही उत्तर बरबरीक के सिर से पूछते हैं जिसने संपूर्ण युद्ध होते देखा है। वही इस बात का निर्णय करेगा। बरबरीक ने कहा ये तो केवल कृष्ण ही थे जो इस विजय श्री के लिए उत्तरदायी है। उनकी सलाह, उनकी उपस्थिति और उनकी सटीक युद्ध योजना। बरबरीक ने आगे कहा कि उसने पूरे युद्ध क्षेत्र में सुदर्शन चक्र को घूमते देखा जो कौरव सेना को टुकड़ों में काटते फिर रहा था और द्रौपदी जिसने महाकाली दुर्गा का रौद्र रूप धारण कर रखा था जो दुश्मन सेना का कटोरे पे कटोरे भरकर खून पी रही थी और खून की एक बूंद भी धरती पर गिरने नहीं दे रही थी।''[2]

राजस्थान राज्य के सिकर जिला में 'खाटू श्याम जी' का भव्य मन्दिर है तथा इन्हें भगवान कृष्ण का ही रूप माना जाता है और फाल्गुन माह में यहाँ खाटू श्याम जी की आस्था में बहुत बड़ा मेला मनाया जाता है इसके इलावा भी खाटू श्याम जी के विभिन्न स्थानों पर मन्दिर है जहाँ पर इनके प्रतिरूप सिर की पूजा की जाती है।

एक अन्य प्रसंग स भी इन बातों की पुष्टि होती है बस तथ्य और जगहों का विवरण भिन्न है। मण्डी जिले में कमरू नाग एक महाभारत कालीन यक्ष था। कमरू नाग से सम्बन्धित दंत कथा भी बब्रूवाहन और बरबरीक की किंवदती से मेल खाती है। इस कथा में भी श्रीकृष्ण यक्ष से उसका सिर दान में मांगते हैं। जिनका सिर रूपी मोहरा आज कमरू नाग देवता के रूप में मण्डी जिला में पूजित है।

बब्रूवाहन और बरबरीक नामक महाभारत कालीन योद्धा की यही पौराणिक गाथा हिमाचल में भी विभिन्न किवदंतियों को संजोए इन दैवीय मोहरों के लिए काफी हद तक उत्तरदायी मानी जा सकती है। मान्यता है कि हिमाचल के समूचे क्षेत्र में पाण्डवों ने अज्ञात वास का समय व्यतीत किया था। वह जहाँ भी ठहरते वहीं छोटे अथवा बड़े पत्थरों से बने नागर अथवा शिखर शैली के मन्दिरों का निर्माण करते थे। आज भी हम हिमाचल प्रदेश के

2 डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू डॉट महाभारता आनलाईन डॉट कॉम द स्टोरी ऑफ बरबरीका

विभिन्न क्षेत्रों में इस प्रकार के मन्दिरों को देख सकते हैं। जिला शिमला के हाटकोटी नामक स्थान जहाँ हाटेश्वरी माता का मन्दिर स्थित है उसके आंगन में भी पाण्डवों के प्रतिरूप पाँच पौराणिक शिला द्वारा निर्मित लघु मन्दिर स्थित है।

इसके इलावा व्यास नदी के ऊपरी भाग से लेकर युमना नदी तक फैले प्रदेश के इस भू–भाग में निचली पर्वत श्रेणियां और शिवालिक की पहाड़ियों के मध्य भाग में कुलिंदों का राज था। इसके पश्चिम में त्रिगर्त और कुलूत के बीच शतद्रु (सतलुज) नदी थी। कनिंघम के अनुसार सतलुज नदी के दोनों ओर के पर्वतीय प्रदेश विशेषकर सोलन, सिरमौर और शिमला कुलिंद प्रदेश के भू–भाग रहे हैं। कुलिंद जनपद का वर्णन महाभारत, विष्णु पुराण, मार्कंडेय पुराण और बृहत्संहिता में भी है। महाभारत युद्ध में अधिकतर कुलिंदों ने कौरवों का साथ दिया था। पाणिनी ने कुलिंदों को पेशेवर लड़ाकू और राजपूतों की संज्ञा दी है।

कनिघंम मानते हैं कि कुल्लू से लेकर गढ़वाल तक के पर्वतीय प्रदेश में कनैत जाति के लोग कुलिंदों के ही वंशज है। प्रतीत होता है कि जब कुषाणों ने मैदानी भाग में अधिकार किया तो कुलिंद पहाड़ों की ओर चले गए। कुलिंदों की मुद्राए मेवा (हमीरपुर) ज्वालामुखी, अंबाला, सहारनपुर, गढ़वाल और कांगड़ा में मिली है। व्यास से लेकर यमुना की उत्तर पश्चिमी धारा तौंस नदी तक का प्रदेश कुलिंदों का प्रदेश कहलाता है।''[3]

इसके अनुसार यदि कुलिंद कौरवों की ओर से लड़े थे तो अवश्य ही इस युद्ध में काफी संहार हुआ था तथा कई बड़े–बड़े योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए थे तो हिमाचल प्रदेश में मोहरों को महाभारत काल के बाद पूजा जाना भी मोहरों के उदभव व अस्तित्व का एक स्त्रोत मालूम पड़ता है। क्योंकि इस युद्ध में असंख्य ऐसे वीर योद्धा व दैवीय पुरुष वीरगति को प्राप्त हुए थे जिनका उद्भव बाद के काल में उनके प्रतिरूप धातुई मोहरों के रूप में अस्तित्त्व में आया। इनके बलिदान को सदैव ज्ञात रखने के लिए ही शायद इनका मुकुट से लेकर छाती तक या कह सकते हैं कि इनके सिरों का ही प्रतिरूप बनाया जाने लगा। समय के बदलने के साथ–साथ इनके नामों व स्थानों में भी परिवर्तन आता गया।

एन्टिक्यूटीज ऑफ हिमाचल के पृष्ठ संख्या 182 में भी बलिदान से ही इन मुहरों का संबंध जोड़कर देखा गया है इसके अनुसार शिवा और बौद्ध तान्त्रिक शास्त्र में दोनों के ही रौद्र रूपों में काटकर अलग किए गए सिरों की माला को पहने दर्शाया है और रथों में पिरामिड नुमा सजावटी योजना द्वारा ढेर सारे मोहरों का अलंकरण

[3] दिव्य हिमाचल डॉट कॉम, हिमाचल का इतिहास, भाग–10

बलिदानी व्यक्ति के प्रतिरूपों को ही दर्शाता है। महाकाली के रौद्र रूप में भी कटे सिरों की माला को पहने दर्शाया जाता है।

अतः बलिदान चाहे जिसने जिस रूप में भी दिया हो पौराणिक समय से ही यह किसी न किसी रूप में प्रदर्शित होता आया है। शिव द्वारा मुण्डलमाला धारण करना, शक्ति द्वारा मुण्डलमाला धारण करना, श्रीकृष्ण द्वारा बरबरीक के सिर को सम्मान देना और आगे यह क्रम निरन्तर चलते–चलते आज हमारे सम्मुख मोहरा रूप में पूजनीय है।

समय के साथ–साथ इसमें ऋषि–मुनि, तपस्वी, साधु–सन्त, राजा–महाराजा, देवियां, सतियां, नाग, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सुर–असुर सभी किसी न किसी रूप में जुड़ते रहे। इसी का प्रमाण है कि आज जिला शिमला के विभिन्न मंदिरों में विभिन्न शैलियों व कालों में बने असंख्य मोहरों की संख्या विद्यमान है। यहाँ किसी न किसी उद्देश्य के लिए इन्हें किसी न किसी रूप में पूजा जाता है तथा शिव व शक्ति की इसका मूल रहा होगा तभी तो जिला शिमला में इनकी मान्यता व आस्था प्रबल है। आज शिमला के विभिन्न देवी–देवताओं के मोहरे शिव व काली को समर्पित है। शिमला के कुछ क्षेत्रों में नारायण व ब्रह्मा के मोहरे भी विद्यमान है जिनमें से कुमार सैन देवता कोटेश्वर के रथ में लगा एक त्रिमुखी मोहरा ब्रह्मा जी को समर्पित माना जाता है। इसके इलावा रामपुर बुशहर के प्रमुख देवता बसाहरू (दतात्रेय) के रथ में लगा त्रिमुखी शास्त्रीय सुन्दर मोहरा ब्रह्मा, विष्णु व शिव को समर्पित है।

देवता नरैण टिक्कर के सभी मोहरे नारायण अर्थात् विष्णु भगवान को समर्पित है। शिव तथा काली को समर्पित मोहरों की तो जिला शिमला में भरमार है जो विभिन्न नामों से जिला शिमला के विभिन्न स्थानों पर पूजित है। चतरखण्ड देवता ब्रांदली ने तो अपने रथ में देवी काली के मोहरे को शीर्ष स्थान पर स्थापित किया है।

इसके साथ–साथ एक और कारण पर भी ध्यान दिया जा सकता है धातु अथवा पत्थर से बनी ठोस मूर्ति की अपेक्षा मोहरे वजन में हल्के रखे जाते हैं। मोहरों का पार्श्व भाग खाली होता है ताकि वजन कम रहे। मुकुट से लेकर छाती तक किया जाने वाला निर्माण, मुकुट से लेकर पैरों तक किए जाने वाले निर्माण से हल्का होता है। अतः इन मोहरों को सुगमता से एक स्थान से दूसरे स्थान तक लिया जा सकता है। पत्थर अथवा लकड़ी में मोहरों का अंकन ना कर इसके लिए धातु को ही उपायुक्त माना गया क्योंकि एक तो इसमे दैवीय चमक उत्पन्न की जा सकती है तथा दूसरा इसे एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाते वक्त क्षति होने की आशंका भी बहुत कम है क्योंकि धातु मजबूत होती है और साथ ही चिरायु भी। आज भी सैंकड़ों साल पहले बने मोहरों की चमक व दमक ज्यूं की त्यूं बनी हुई है। धातु के

अलावा अन्य कोई विकल्प ऐसा नहीं हो सकता। अतः हमारे पूर्वजों ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए इन काल जीवी मोहरों का निर्माण किया होगा।

त्रिमुखी मोहरे जिला शिमला

जिला शिमला के दुर्गम से दुर्गम स्थानों पर भी धातुई मोहरे पाए जाते हैं। प्राचीन समय से छोटी–बड़ी लड़ाईयां अक्सर होती रहती थी। यहाँ तक कि खानदानों में आपसी बैर होना आम बात थी। इसके अलावा प्राकृतिक आपदाएं व महामारियां भी लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित होने पर मज़बूर कर देती थी। तब यही दैवीय मोहरे जिन्हें वे सुगमता से अपने साथ ले जा सकते थे इनकी आस्था व विश्वास का साधन होते थे और अन्य स्थान पर स्थानान्तरित होने के पश्चात् ये मोहरे फिर से उनकी संस्कृति व परम्पराआ को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण कड़ी थे। ये मुख्य कारण है कि आज हमें हिमाचल प्रदेश के दुर्गम से दुर्गम स्थानों में भी दुर्लभ धातुई मोहरों के दर्शन होते हैं।

मोहरा लोकशैली व मोहरे समकालीन लोकशैली जिला शिमला

एन्टिक्यूटिज ऑफ हिमाचल के पृष्ठ संख्या 80 में वर्णित एक उदाहरण से ये बात स्पष्ट हो जाती है ''धातुई मोहरे सुगमता से एक स्थान से दूसरे स्थान तक लिए जा सकते है सुजनी देवी का आवक्ष मोहरा एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमता से स्थानांतरण का एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस मोहरे का निर्माण चम्बा म हुआ था जो हिमाचल प्रदेश का पश्चिमी भाग है और बाद में ये निरमण्ड पहुँच गया जो इस प्रदेश के पूर्व में पड़ता है।''[4]

संदर्भ

एन्टिक्यूटिज ऑफ हिमाचल, एम–पोस्टल, एन. नवीन, के मनकोड़ी, पृ, 80
दिव्य हिमाचल डॉट कॉम, हिमाचल का इतिहास, भाग–10
डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू डॉट महाभारता आनलाईन डॉट कॉम द स्टोरी ऑफ बरबरीका

[4] एन्टिक्यूटिज ऑफ हिमाचल, एम–पोस्टल, एन. नवीन, के मनकोड़ी, पृ, 80